RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-10
October-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i10.025

धर्मवीर भारती के नाटक 'अंधायुग' में रंगानुभूति

विश्वजीत कुमार

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी क्षेत्र की सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने और नाटक को दर्शकोन्मुखी बनाने के लिए रंगजगत में कुछ एक जिन नाट्यालेखों ने हिंदी रंगमंच की निजी शैलियों की तलाश और प्रयोगशीलता की संभावनाओं के नये दरवाजे खोले, उनमें धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' का नाम सबसे पहले लिया जाता है।

नाटक का 'पाठ्यपक्ष, जो अंतिम प्रभाव उत्पन्न करता है, उसे मोटे तौर पर नाट्यानुभूति अथवा प्रेक्षक की भाव दशा (स्थाई) कहा जा सकता है। मोटे तौर पर नाटक के दो पक्ष हैं– (1) रचना कर्म और (2) प्रदर्शन कर्म। वस्तुतः नाटक/रंगमंच रचनात्मक विचार का दृश्यात्मक संप्रेषण है और नाटक के 'पाठ्य' से पैदा होने वाली प्रेक्षक की स्थायी भावदशा (नाट्यानुभूति) से आगे प्रस्तुति के स्तर पर नाटक/रंगमंच जो अंतिम प्रभाव उत्पन्न करता है, रंगानुभूति कहा जा सकता है। रंगानुभूति से अभिप्राय है मंचीय प्रक्रिया एवं प्रयासों तथा रंग संसाधनों के जरिए रचनात्मक विचार का प्रेक्षकीय चिंतन–संवेदन में ढल जाना। शास्त्रीय शब्दावली में इसे रसनिष्पति अथवा प्रेक्षक की रस दशा माना जाता है।[1] इस दृष्टि से नाटककार 'धर्मवीर भारती तथा परिचालकों द्वारा प्रस्तुति–प्रयोग की विभिनन शैलियों से 'अंधायुग' भी श्रव्य और दृश्य–पक्ष के कलात्मक नियोजन के साथ जिस प्रकार नाटक में उभारा गया है वह पाठक/दर्शक/श्रोता के चिंतन और संवेदन में वैचारिक स्तर पर खलबली पैदाकर सोचने को मजबूर कर देता है।

अंधायुग एक प्रतीकात्मक नाटक है। इस दृश्य–काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है। अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात है, केवल कुछ ही तत्व उत्पाद्य है। कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएं। इसके कई कारण भी हो सकते हैं। भारत की सामूहिक चेतना में महाभारत के पात्र–प्रसंग जिस रूप में विख्यात हैं, ये किसी से छुपा नहीं है। पारंपरिक विश्वासों के खिलाफ जब ऐसे पात्रों की पौराणिक छवि को तोड़–मरोड़ कर मंच पर प्रस्तुत किया जाए तो जन–आस्था पर सीधे चोट पड़ती हैं रचनात्मक विचार–सत्य की सत्ता के प्रभाव और ग्रहण के प्रति प्रेक्षकीय संवेदन संशयशील हो उठता है। ये कोई चरित्रांकन संबंधी ओक्षप नहीं है और न ही नाटक के प्रचलित कथ्य, वैचारिक धरातल और सामयिक प्रासंगिकता पर सवालिया निशान है बल्कि एक जनात्मक विमर्श है जो भारत के 'जन–गण–मन' से जुड़ा है।[2]

अंधायुग काव्य नाटक को देखने–पढ़ने के बाद जो सबसे पहले मन में सवाल उठता है– वह यह कि नाटककार ने एक पौराणिक कथा को अपने तरीके से फिर से लिखने की कोशिश तो नहीं की है? इसका उत्तर खोजते हैं तो पाते हैं कि 'महाभारत' की कथा तो यहाँ है ही नहीं। 'महाभारत' की पृष्ठभूमि अवश्य है पर पृष्ठभूमि के प्रसंग में कुछ गंभीर प्रश्न उठाए गए हैं– जिनका उत्तर हमें (और सम्पूर्ण मानव जाति को) अपने भीतर से तलाश करना है और पूरी ईमानदारी के साथ। 'महाभारत' का यह प्रसंग आत्म–निरीक्षण की गंभीर जरूरत पर बल देता है, क्योंकि आज की स्थितियाँ 'महाभारत' से कम विस्फोटक या विध्वंसक नहीं है। तो क्या अपनी या कुछ लोगों की विवेकहीनता के कारण हम आज भी उसी द्वापर की तरह संपूर्ण मानव जाति को विनाश के अंधे गहवर में धकेल दे या धकेले जाने में दूसरो की मदद करें या चुप रहकर धकेलने वालों का हौसला बढ़ाएँ ओर खुद भी अंधेरे में खो जाए। जाहिर है यह 'महाभारत' के पुराख्यान का पुनर्सृजन भर नहीं है। द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद के विश्व को दृष्टांत के बहाने दी गई चेतावनी है कि तीसरे विश्व युद्ध के बाद शायद 'महाभारत' के पुराख्यान को दुहराने वाला या फिर से उसे सुनने–सोचने वाला भी कोई शेष न बचेगा, अगर समय रहते 'धर्म' एवं 'विवेक' का मतलब समझ नहीं लिया जाता। अपने भीतर के गहरे गहरे अंधेरे में छिपे हम अपने ही पाप की आदिम बर्बर पशु मानव की शनाख्त नहीं कर लेते और उसे काबू में नहीं कर लेते।

'अंधायुग' एक ओर जहाँ समन्वय के कई आयामों का संकेत करता है। (जैसे– आस्था और अनास्था, सत् और असत, आदर्श और यथार्थ, भाव ओर कला, काल काव्यत्व और दृश्यत्व आदि) वहीं दूसरी ओर एक व्यापक जीवन सत्य का उद्घाटन भी करता है कि आशा, सौंदर्य, उन्नति, आस्था, क्षमा, निर्माण आदि शुभत्व के मुकाबले, कुछ, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध विकृति, कुरूपता, अंधापन भी जीवन और जगत का उतना ही कड़वा सच हैं, जिनसे घबराने और भागने के बजाए जिनका मुरतैदी से सामना करना ही जीवंतता है। वस्तुतः 'अंधायुग' अंधो के बहाने ज्योति की कथा है। इस बात को 'भारती' जी इन पंक्तियों के माध्यम से रखते हैं–

पर शेष अधिकतर हैं अंधे

RRIJM 2015, All Rights Reserved

पथ भ्रष्ट, आत्महारा, विगलिन
अंतर की अंध गुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अंधों की है
या कथा ज्योति की है अंधों के
माध्यम से''.....[3]

'अधायुग' नाटक चाहे रेडियो नाटक या मंच पर प्रदर्शित होकर भले ही कई रंगानुभूति कराया हो, सराहा गया हो लेकिन कुछ लोग इससे भिन्न मत भी रखते हैं– 'रमेश गौतम' के शब्दों में– ''भारती' को अंधायुग चाहे कितनी ही प्रदर्शन शैलियों में आजमाया गया हो, रंगकर्मियों के बीच सफलता की कसौटी माना गया है। प्रगतिशील, बुद्धि के विचारकों में सराहा और बहस–मुबाहसे का विषय बनता रहा हो, विश्वविद्यालयों में अध्ययन–अध्यापन में शामिल किया जाता रहा हो, जन–समृति में इसकी पैठ एक इंच भी नहीं है। मैं विनम्रता से कहना यह चाहता हूँ कि मिथक नाटक में संप्रेषण का परम कारगर अस्त्र है बशर्ते कि उसका रचनातमक उपयोग जातीय–स्मृति के दायरे में करते हुए उसका युगानुकूल धर्म के अनुरूप विकास एवं संवर्धन किया जाए लेकिन पश्चिम–बोध के मोह के कारण अपने रचनात्मक प्रयास में मिथकों का अवमूल्यन करने के कारण भारती का यह 'निजी सत्य' साहित्यिक क्षेत्र की हदबंदी तोड़कर जनमानस में व्यापक नहीं बन पाया, जो उसे होना चाहिए था, क्योंकि मानस रक्षा मानव विकास, विश्व–शांति, निःशस्त्रीकरण और परमाणु अप्रसार के लिए नाटककार युद्ध–संस्कृति के खिलाफ जिस मानव विवेक पर भरोसा कर उसका आह्वान करता है, आण्विक अस्त्र शस्त्रों की भयावह दुनिया में संकट–बोध का संप्रेषण कर युद्ध–मानसिकता के प्रति विश्व–जनमत को जागरूक करना चाहता है, धर्मबुद्धि की परंपरागत ईश्वरीय आस्था के बदले मनुष्य के कर्म और विवेक की शक्ति पर आस्था को जगाना चाहता हैः– इन्हीं कारणों से आस्तिक और आधुनिक बुद्धि से ईश्वरीय आस्था के लोकतंत्रीकरण तथा मनुष्य मात्र की रक्षा के इस विचार को प्रेक्षकीय अनुभूति और संवेदना की स्थायी निधि के रूप में ढलना ही चाहिए था, जो नहीं हो पाया। क्योंकि भारत की नाट्य संस्कृति जीवन और उसके विश्वासों की कभी भी अलग करके नहीं चली। बाहरी संस्कृति और विचार के प्रभावों को यदि हमने अपने अंदर दखल देने की इजाजत दे दी तो हमारा अपनापन धराशायी हो जाएगा जिस पर आज बाहरी तौर पर अपना कुछ न होने पर भी हम गर्व करते हैं, अपनी पहचान को बचाए, हुए हैं।''[4]

'अंधायुग' के पात्रों के जीवंत चरित्रांकन और व्यक्ति की मूल–प्रवंत्तियों के प्रतीक रूप में प्रस्तुतीकरण के साथ–साथ यह भी दृष्टव्य है कि ये सभी 'चरित्र' मानवीय अस्तित्व की अपेक्षा विशेष विचारधारा अथवा कुण्ठाओं के प्रतीक अधिक है। इककीसवीं सदी में भी प्रासंगिक बने हुए बीसवीं सदी की पतोन्मुखी संस्कृति के प्रतिनिधि यहाँ उपस्थित हैं 'युधिष्ठिर' एवं 'धृतराष्ट्र' नेतृवर्ग की अंधी शक्ति उपासना, संपूर्ण विश्व पर एकाधिकार की स्वार्थी वासना के प्रतीक हैं। एक विजयी वर्ग का है, एक विजित वर्ग का 'गांधारी' मानवता का वह घबराया हुआ वर्ग है जो युग बर्बर पशुतव, अमर्यादित नैतिकता और जीवन के द्वंद्वमय विरोधाभासी संस्कारों के कारण प्रतिक्रिया स्वरूप कटुनिराशा की उद्धृत अनास्था का मार्ग पकड़ लेती है। अश्वत्थामा, प्रतिहिंसक पशुत्व और एक न्यूराटिक युद्ध– लिप्सा के अर्द्ध–सत्य का पोषक हैं वह उसकी नीति नहीं अपितु मनोग्रंथी है। अश्वत्थामा उस वर्ग का संकेत देता है जिस पर महायुद्धों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। महायुद्ध के सीधे प्रभाव में आने वाले राष्ट्रों के मानसिक असंतुलन की यह विक्षिप्तावस्था अश्वत्थामा के रूप में स्पष्ट रूप से सामने आती हैं यह वर्ग एक ऐसी नर्वस टैंशन की स्थिति में रहा है और है जिसकी मानसिक कुण्ठाओं की तृप्ति के लिए युद्ध एक आवश्यक पदार्थ हैं अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र प्रयोग में अणु–विस्फोट का संकेत है।[5] कृष्ण ज्योति, विवेक या मानवता के प्रतीक हैं। युयुत्सु द्विधाविदीर्ण मानसिकता और द्वंद्वग्रस्तता का प्रतीक है तो संजय निष्क्रियता और निरपेक्ष सत्य का। प्रहरी न तो स्वतंत्र–द्रष्टा हैं और न ही इन्हें आम आदमी का संत्रास भोगना पड़ता है। नाटक का एक भी कार्य या संवाद इनमें लावा और बारूद भरे होने का संकेत नहीं देता। सामान्य जन अपने छोटे–छोटे संकीर्ण स्वार्थों की परिधि में चक्कर काटते हुए सब ओर की उथल–पुथल और व्यापक परिवर्तनों से निरपेक्ष रह कर 'कोऊनृप होय हमें का हानि' की रट लगाता रहता है। वास्तव में इनकी तटस्थता और निरपेक्षता भी अंधे युग की सर्वग्रासी अंधता का ही एक स्तर है।

युद्ध का उद्देश्य चाहे जितने भी महान हो, युद्ध सभी को चाहे वे कितने मर्यादावादी ही क्यों न हों– पशु बनने के लिए विवश कर देता है। स्वार्थ ही युद्ध का कारण है। वास्तव, में, व्यापक मानवता के हित के लिए कभी कोई युद्ध नहीं लड़ा गया। युद्ध में मानवता की विजय हो ही नहीं सकती। युद्ध के आमंत्रण का अर्थ है– दानवता की विजय और मानवता की निश्चित पराजय। आज के समाज में भी व्यक्तिगत स्वार्थ सर्वोपरि है, स्वार्थ के वशीीूत मानव–मन उचित अनुभूति अनुचित का विवेक खो बैठता है। आज के युग में भी, 'महाभारत' जैसे व्यक्तिगत स्वार्थज्ञ के पोषक धृतराष्ट्रों की कमी दिखाई नहीं पड़ती, जिनके व्यक्तिगत स्वार्थ ने विनाशक युद्ध की दुंदुभी बजाकर भयंकर मानवीय संहार करवाया। आज भी क्या विश्व स्थिति कुछ इसी प्रकार का नहीं है? हर देश की विदेश नीति अपने देश के स्वार्थ की चिंता करती है, व्यापक मानवता, सत्य अथवा विवेक की नहीं।

अंधायुग के मंचन के निर्देश खुद भारती ने दिए हैं। इसमें अंकपरिवर्तन अथवा दृश्यांतर के लिए कथा–गायन की पद्धति को भारती ने लोक–नाट्य से ग्रहि किया। प्रहरियों के संवाद और उसकी नियोजना ग्रीक नाट्य मंच और ग्रीक शैली की याद दिलाते हैं। निःसंदेह इसमें अस्तित्ववादी चिन्तन और साहित्य का प्रभाव दिखता है, परन्तु यह कहना कि अनास्था,

विसंगति, व्यर्थता और आत्महत्या का हमारे आज के तनावपूर्ण द्विद्व द्विधाविदीपर्ण जीवन से कोई संबंध ही नहीं है अपने आप को आज के जीवन प्रवाह से काटकर हाथी–दाँत की सुंदर सुरक्षित मीनारों में कैद कर लेना होगा। ''अंधायुग पर और विशेषतः कृष्ण के चरित्र पर इंसाईयत का प्रभाव भी स्वीकार किया गया है। अनेक स्थानों पर कृष्ण के शब्द 'जीसस' के शब्दों जैसे सुनाई पड़ते हैं।''[6]

पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल उठते गिरते संवादों ने 'अंधायुग' के अभिनय को सरल बना दिया है। जिससे कहीं भी एकरसता का दोष दिखाई नहीं पड़ता। संवादों में प्रखरता को वाणी देने के लिए 'भारती' ने पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व, व्यंग्य आदि का सहारा लिया है। जैसे– विदुर द्वारा संजय के स्थान पर स्वयं एक स्थल पर युद्ध की सूचना देना–

''संजय नहीं मुझसे सुनो...
स्त्रियाँ जहाँ थी वहीं कुचल गई...
पाण्डव शिविरों में लगा दी आग।''[7]

युद्ध से लौटने पर गान्धारी द्वारा युयुत्सु के मर्म को छलनी करने वाला कटु व्यंगय से पूर्ण साधुवाद–

''बेटा,
भुजाएँ ये तेरी, थकी तो नहीं...
अपने बन्धुजनों का
वध करते करते?''.....''[8]

अश्वत्थामा के संवादों में जहाँ उत्तेजना दिखता है कृष्ण के संवादों शान्ति और गाम्भीर्य का संतुलन। अश्वत्थामा का एक संवाद–

''मेरी इस पसली के नीचे
दो पेजे उग आयें
मेरी ये पुतलियाँ
बिना दाँतों के चीप खायें
पायें जिसे।''

पात्रों की वेष–भूषा के विषय में अधिक संकेत न देकर भी नाटककार ने संकेतों की योजना से पात्रों की उद्विग्न मनःस्थितियों चेष्टाओं और भाव–भंगिमाओं को समझने में तो सरलता है ही किन्तु इन संकेतों से मंच को एक महत्वपूर्ण लाभ है कि यह मंच की क्रियाशीलता को जीवित रखने में सहायक है। जैसे– सैनिक का घिसटते हुए आना, संकेत से पानी माँगना, वन में सियारों का रोदन, कौआ एक बार अलसायी करवट लेना आदि।

भाषा में कहीं–कहीं क्लिष्टता होने के बावजूद, व्यवहारिकता से संपुष्ट, सरलता, प्रवाहात्मकता के साथ लयबद्ध होने के कारण मंच प्रदर्शन के अनुकूल है। शब्दों और वाक्यों के पुनर्पुनः प्रयोग का आश्रय लेकर जिज्ञासा भरे वातावरण को बनाने की कोशिश की है जैसे, गान्धारी की उक्ति–

''फिर क्या हुआ?
संजय फिर क्या हुआ?''[10]

शिल्प प्रयोग को सशक्त बनाने के लिए कवि ने शब्दों और वाक्यों के पुनर्पुनः प्रयोग का आश्रय लेकर जिज्ञासा भरे वातावरण को बताने की कोशिश की है। जैसे, गान्धारी की उक्ति–

''फिर क्या हुआ?
संजय फिर क्या हुआ?''[11]

दृश्य परिवर्तन के लिए परम्परित पर्दों के साथ–साथ अंधकार के आधुनिक युक्ति का भी प्रयोग किया गया है। नाटकीय मौन और 'अट्टहास' के बीच ध्वनियों का रोचक वैविध्य दृष्टव्य है। जैसे– हाँफने की आवाज, क्रन्दन, शोरगुल, गर्जन, चीख, वीभत्स हंसी आदि। प्रकाश योजना भी तर्कपूर्ण है। रात और दिन के 'घने अंधकार' एवं तीव्र प्रकाश के न जाने कितने रंग–रूप बिखरे पड़े हें– रात, संध्या, प्रातः, दुपहर, दीप, मशाल, ज्योति की चमक, जलता हुआ वन, अलौकिक प्रकाश आदि।''[12]

नाटकीय मौन और भयानक 'अट्टहास' के बीच ध्वनियों का रोचक वैविध्य दृष्टव्य है। जैसे– हाँफने की आवाज, क्रन्दन, शोरगुल, गर्जन, चीख, वीभत्स हंसी आदि प्रकाश योजना भी तर्क पूर्ण है। रात और दिन के 'घने अंधकार' एवं तीव्र–प्रकाश के न जाने कितने रंग–रूप बिखड़े पड़े हैं; रात, संध्या, प्रातः दुपहर, दीप, मशाल, ज्योति की चमक, जलता हुआ वन, अलौकिक प्रकाश आदि।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'अंधायुग' पौराणिक प्रख्यात कथानक पर आधारित आधुनिक संवेदना और आधुनिक भावबोध की बहुचर्चित कृति है इसके संवाद और उनकी गूढ़ाशय पूर्ण अभिव्यक्ति ऊपर से देखने में सीधी सादी लगती है किनतु पाठक ज्यों–ज्यों उनके अंतर में पैठता है त्यों–त्यों अत्याधुनिक भाव–बोध के स्तर खुलते जाते हैं। अर्थात् इसका कथानक ऐतिहासिक–पौराणिक है और उसकी संवेदना अत्याधुनिक। साथ ही रंगानुभूति में सहायक तत्व हैं। नाटक पर पश्चिमी प्रभाव के बावजूद वे सभी परंपरागत मंचगत तत्व मौजूद हैं, जिसे अच्छे निर्देशक सही निदर्शन में रंगानुभूति को सार्थक एवं सफल बना सकते हैं। कई बार इस नाटक के मंचन एवं रेडियो प्रसारण इसके सफलता के द्योतक हैं।

संदर्भ सूचीः–

1. रंगानुभूति के बहुरंग – रमेश गौतम, स्वराज प्रकाशन, पृ. 127
2. वही, पृ. 127
3. वही, पृ. 129

4. हिन्दी साहित्य, पाठ्य पुस्तक (इग्नू)
5. वही
6. रंगानुभूति के बहुरंग – रमेश गौतम, पृ. 129
7. 'अंधायुग' – धर्मवीर भारती, पृ. 80 (मूल पाठ्यपुस्तक)
8. वही, पृ. 55–56
9. मूल पाठ्य पुस्तक से
10. हिन्दी नाटक उद्भव एवं विकास, दशरथ ओझा, राजपाल एंड संस, 2003, पृ. 79
11. अंधायुग : एक सृजनात्मक उपलब्धि, सुरेश गौतम, पृ. 125
12. मूल पाठ, पृ. 48, 49, 68, 69, 73)

RRIJM 2015, All Rights Reserved